गायत्री की गुप्त शक्तियाँ

गायत्री की गुप्त शक्तियाँ

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य

धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

गायत्री सनातन एवं अनादि मंत्र है। पुराणों में कहा गया है कि— "सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को आकाशवाणी द्वारा गायत्री मंत्र प्राप्त हुआ था, इसी गायत्री की साधना करके उन्हें सृष्टि निर्माण की शक्ति प्राप्त हुई। गायत्री के चार चरणों की व्याख्या स्वरूप ही ब्रह्माजी ने चार मुखों से चार वेदों का वर्णन किया। गायत्री को वेदमाता कहते हैं। चारों वेद, गायत्री की व्याख्या मात्र हैं।" गायत्री को जानने वाला वेदों को जानने का लाभ प्राप्त करता है।

गायत्री के २४ अक्षर अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं के प्रतीक हैं। वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति, उपनिषद आदि में जो शिक्षाएँ मनुष्य जाति को दी गई हैं, उन सबका सार इन २४ अक्षरों में मौजूद है। इन्हें अपनाकर मनुष्य प्राणी व्यक्तिगत तथा सामाजिक सुख–शांति को पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है।

गायत्री, गीता, गंगा और गौ यह भारतीय संस्कृति की चार आधारशिलाएँ हैं, इन सबमें गायत्री का स्थान सर्वप्रथम है। जिसने गायत्री के छिपे हुए रहस्यों को जान लिया, उसके लिए और कुछ जानना शेष नहीं रहता।

समस्त धर्म ग्रंथों में गायत्री की महिमा एक स्वर से कही गई। समस्त ऋषि-मुक्त कंठ से गायत्री का गुण–गान करते हैं। शास्त्रों में गायत्री की महिमा बताने वाला साहित्य भरा पड़ा है। उसका संग्रह किया जाए, तो एक

बड़ा ग्रंथ ही बन सकता है। गीता में भगवान ने स्वयं कहा है—'गायत्री छंदासामहम्' अर्थात—गायत्री मंत्र मैं स्वयं ही हूँ।

गायत्री उपासना के साथ-साथ अन्य कोई उपासना करते रहने में कोई हानि नहीं। सच तो यह है कि अन्य किसी भी मंत्र का जाप करने में या देवता की उपासना में तभी सफलता मिलती है, जब पहले गायत्री द्वारा उस मंत्र या देवता को जाग्रत कर लिया जाए। कहा भी है—

यस्य कस्यापि मंत्रस्य पुरश्चरणमारभेत्।
व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं चायुतं जपेत्॥
नृसिंहार्कवराहाणां तान्त्रिकं वैदिकं तथा।
बिना जप्त्वातु गायत्रीं तत्सर्वं निष्फलं भवेत॥

—दे० भा० ११.२१.४-५

चाहे किसी मंत्र का साधन किया जाए। उस मंत्र को व्याहृति समेत गायत्री सहित जपना चाहिए। चाहे नृसिंह, सूर्य, वराह आदि किसी की उपासना हो या वैदिक एवं तांत्रिक प्रयोग किया जाए, बिना गायत्री को आगे लिए वे सब निष्फल होते हैं। इसलिए गायत्री उपासना प्रत्येक साधक के लिए आवश्यक है।

गायत्री सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्तम मंत्र है। जो कार्य संसार में किसी अन्य मंत्र से हो सकता है, गायत्री से भी अवश्य हो सकता है। इस साधना में कोई भूल रहने पर भी किसी का अनिष्ट नहीं होता, इससे सरल, स्वल्प, श्रम साध्य और शीघ्र फलदायिनी साधना दूसरी नहीं है।

गायत्री मंत्र के २४ अक्षरों में अनेक ज्ञान-विज्ञान छिपे हुए हैं। अनेक दिव्य अस्त्र-शस्त्र, सोना आदि बहुमूल्य धातुओं का बनाना, अमूल्य औषधियाँ, रसायनें, दिव्य यंत्र अनेक सिद्धियाँ, शाप-वरदान के प्रयोग, नाना प्रयोजनों के लिए नाना प्रकार के उपचार, परोक्ष विद्या, अंतर्दृष्टि, प्राण विद्या, वेधक प्रक्रिया, शूल शाल्य, वाममार्गी तंत्र विद्या, कुंडलिनी चक्र, दश महाविद्या, महामातृका, जीवन निर्मोक्ष, रूपांतरण, अक्षात सेवन, अदृश्य दर्शन, शब्द परव्यूह, सूक्ष्म संभाषण आदि अनेक लुप्त प्राय महान विद्याओं के रहस्य, बीज और संकेत गायत्री में मौजूद हैं। इन विद्याओं के कारण

एक समय हम जगद्गुरु, चक्रवर्ती शासक और स्वर्ग संपदाओं के स्वामी, बने हुए थे, आज इन विद्याओं को भूलकर हम सब प्रकार दीन-हीन बने हुए हैं। गायत्री में सन्निहित उन विद्याओं का यदि फिर प्रकटीकरण हो जाए, तो हम अपना प्राचीन गौरव प्राप्त कर सकते हैं।

गायत्री साधना द्वारा आत्मा पर जमे हुए मल विक्षेप हट जाते हैं, तो आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रकट होता है और अनेक ऋद्धि-सिद्धियाँ परिलक्षित होने लगती हैं। दर्पण माँज देने पर उसका मैल छूट जाता है, उसी प्रकार गायत्री साधना से आत्मा निर्मल एवं प्रकाशवान होकर ईश्वरीय शक्तियों, गुणों, सामर्थ्यों एवं सिद्धियाँ से परिपूर्ण बन जाती हैं।

आत्मा के कल्याण की अनेक साधनाएँ हैं। सभी का अपना-अपना महत्त्व है और उनके परिणाम भी अलग-अलग हैं। 'स्वाध्याय' से सन्मार्ग की जानकारी होती है। 'सत्संग' से स्वभाव और संस्कार बनते हैं। 'कथा सुनने से सद्भावनाएँ जाग्रत होती हैं। 'तीर्थयात्रा' से भावांकुर पुष्ट होते हैं। 'कीर्तन' से तन्मयता का अभ्यास होता है। दान-पुण्य से सुख-सौभाग्यों की वृद्धि होती है। 'पूजा-अर्चा' से आस्तिकता बढ़ती है। इस प्रकार यह सभी साधन ऋषियों ने बहुत सोच-समझकर प्रचलित किए हैं। पर 'तप' का महत्त्व इन सबसे अधिक है। तप की अग्नि में पड़कर ही आत्मा के मल विक्षेप और पाप-ताप जलते हैं। तप के द्वारा ही आत्मा में वह प्रचंड बल पैदा होता है, जिसके द्वारा सांसारिक तथा आत्मिक जीवन की समस्याएँ हल होती हैं। तप की सामर्थ्य से ही नाना प्रकार की सूक्ष्म शक्तियाँ और दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसलिए तप साधन को सबसे शक्तिशाली माना गया है। तप के बिना आत्मा में अन्य किसी भी साधना से—तेज, प्रकाश, बल एवं पराक्रम उत्पन्न नहीं होता।

गायत्री उपासना प्रत्यक्ष तपश्चर्या है, इससे तुरंत आत्मबल बढ़ता है। गायत्री साधना एक बहुमूल्य दिव्य संपत्ति है। इस संपत्ति को इकट्ठी करके साधक उसके बदले में सांसारिक सुख एवं आत्मिक आनंद भली प्रकार प्राप्त कर सकता है।

गायत्री मंत्र से आत्मिक कायाकल्प हो जाता है। इस महामंत्र की उपासना आरंभ करते ही साधक को ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे आंतरिक क्षेत्र में एक नई हलचल एवं रद्दोबल आरंभ हो गई है। सतोगुणी तत्त्वों की अभिवृद्धि होने से दुर्गुण, कुविचार, दुःस्वभाव एवं दुर्भाव घटने आरंभ हो जाते हैं और संयम, नम्रता, पवित्रता, उत्साह, स्फूर्ति श्रमशीलता, मधुरता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, उदारता, प्रेम, संतोष, शांति, सेवाभाव, आत्मीयता आदि सद्गुणों की मात्रा दिन-दिन बड़ी तेजी से बढ़ती जाती है। फलस्वरूप लोग उसके स्वभाव एवं आचरण से संतुष्ट होकर बदले में प्रशंसा, कृतज्ञता, श्रद्धा एवं सम्मान के भाव रखते हैं और समय-समय पर उसकी अनेक प्रकार से सहायता करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त सद्गुण स्वयं इतने मधुर होते हैं कि जिस हृदय में इनका निवास होता है, वहाँ आत्म-संतोष की परम शांतिदायक शीतल निर्झरिणी सदा बहती है। ऐसे लोग सदा स्वर्गीय सुख का आस्वादन करते हैं।

गायत्री साधना के साधक के मनःक्षेत्र में असाधारण परिवर्तन हो जाता है। विवेक, दूरदर्शिता, तत्त्वज्ञान और ऋतुम्भरा बुद्धि की अभिवृद्धि हो जाने के कारण अनेक अज्ञान जन्य दुःखों का निवारण हो जाता है। प्रारब्धवश अनिवार्य कर्मफल के कारण कष्टसाध्य परिस्थितियाँ हर एक के जीवन में आती रहती हैं, हानि, शोक, वियोग, आपत्ति, रोग, आक्रमण, विरोध, आघात आदि की विभिन्न परिस्थितियों से जहाँ साधारण मनोभूमि के लोग मृत्यु तुल्य कष्ट पाते हैं; वहाँ आत्मबल संपन्न गायत्री साधक अपने विवेक, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आशा, धैर्य, संतोष, संयम और ईश्वर विश्वास के आधार पर इन कठिनाइयों को हँसते-हँसते आसानी से काट लेता है। बुरी अथवा असाधारण परिस्थितियों में भी वह अपने आनंद का मार्ग ढूँढ़ निकालता है और मस्ती, प्रसन्नता एवं निराकुलता का जीवन बिताता है।

प्राचीन काल में ऋषियों ने बड़ी-बड़ी तपस्याएँ और योग साधनाएँ करके अणिमा, महिमा आदि चमत्कारी ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। उनके शाप और वरदान सफल होते थे तथा वे कितने ही अद्भुत एवं

चमत्कारी सामर्थ्यों से भरे पूरे थे, इनका वर्णन इतिहास, पुराणों में भरा पड़ा है। वह तपस्याएँ और योग साधनाएँ गायत्री के आधार पर ही होती थीं। गायत्री महाविद्या से ही ८४ प्रकार की महान योगसाधनाओं का उद्‌भव हुआ है।

गायत्री के २४ अक्षरों का गुंथन ऐसा विचित्र एवं रहस्यमय है कि उनके उच्चारण मात्र से जिह्वा, कंठ, तालु एवं मूर्च्छा में अवस्थित नाड़ी तंतुओं का एक अद्‌भुत क्रम में संचालन होता है। टाइप राइटर की कुंजियों पर उँगली रखते ही जैसे कागज पर अक्षर की चोट पड़ती है, वैसे ही मुख में मंत्र का उच्चारण होने से शरीर में विविध स्थानों पर छिपे हुए शक्ति चक्रों पर उसकी चोट पड़ती है और उनका सूक्ष्म जागरण होता है। इस संचालन से शरीर के विविध स्थानों में छिपे हुए षट्‌चक्र भ्रमर, कमल, ग्रंथि संस्थान एवं शक्ति चक्र झंकृत होने लगते हैं। मुख की नाड़ियों द्वारा गायत्री के शब्दों के उच्चारण का आघात उन चक्रों तक पहुँचता है। जैसे सितार के तारों पर क्रमबद्ध उँगलियाँ फिराने से एक स्वर लहरी एवं ध्वनि चक्रों में झंकारमय गुंजार उत्पन्न होता है, जिससे वे स्वयमेव जाग्रत होकर साधक को योग शक्तियों से संपन्न बनाते हैं। इस प्रकार गायत्री के जप से अनायास ही एक महत्त्वपूर्ण योग साधना होने लगती है और उन गुप्त शक्ति केंद्रों के जागरण से आश्चर्यजनक लाभ मिलने लगता है।

गायत्री भगवान का नारी रूप है। भगवान की माता के रूप में उपासना करने से दर्पण के प्रतिबिंब एवं कुएँ की आवाज की तरह वे भी हमारे लिए उसी प्रकार प्रत्युत्तर देते हैं, संसार में सबसे अधिक स्नेहमूर्ति माता होती है। भगवान की माता के रूप में उपासना करने से प्रत्युत्तर में उनका अपार वात्सल्य प्राप्त होता है। मातृ पूजा से नारी जाति के प्रति पवित्रता, सदाचार एवं आदर के भाव बढते हैं, जिनकी कि मानव जाति को आज अत्यधिक आवश्यकता है।

गायत्री को भूलोक की कामधेनु कहा गया है, क्योंकि यह आत्मा की समस्त क्षुधा, पिपासाएँ शांत करती है। 'गायत्री' को 'सुधा' कहा गया

है—क्योंकि जन्म-मृत्यु के चक्र से छुड़ाकर सच्चा अमृत प्रदान करने की शक्ति से वह परिपूर्ण है। गायत्री को पारसमणि कहा गया है; क्योंकि उसके स्पर्श से लोहे के समान कलुषित अंत:करणों का शुद्ध स्वर्ण जैसा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाता है। गायत्री को कल्पवृक्ष कहा गया है—क्योंकि इसकी छाया में बैठकर मनुष्य उन सब कामनाओं को पूर्ण कर सकता है जो उसके लिए उचित एवं आवश्यक हैं।

श्रद्धापूर्वक गायत्री माता का आँचल पकड़ने का परिणाम सदा कल्याणकारक ही होता है। गायत्री को ब्रह्मास्त्र कहा गया है; क्योंकि कभी किसी की गायत्री साधना निष्फल नहीं जाती। इसका प्रयोग कभी भी व्यर्थ नहीं होता।

गायत्री उपासना से मनुष्य की अनेक कठिनाइयाँ हल होती हैं। ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं कि जो लोग आरंभ में दरिद्रता का अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करते थे, अपने मामूली गुजारे की भी व्यवस्था जिनके पास न थी, कर्ज के बोझ से दबे हुए थे, व्यापार में घाटा जा रहा था, उन्होंने गायत्री उपासना की और अर्थ संकट को पार करके ऐसी स्थिति पर पहुँच गए कि जिनको देखकर अनेकों को ईर्ष्या होने लगी। कम पढ़े और छोटी नौकरियों पर काम करने वालों के ऊँचे पद पर पहुँचने के उदाहरण मौजूद हैं। जिनकी बुद्धि बड़ी ही भौंड़ी और मंद थी वे चतुर, तीक्ष्ण और विद्वान बने हैं। जिनकी परीक्षा में पास होने की आशा कोई नहीं करता था, ऐसे विद्यार्थी अच्छे नंबरों से पास हुए हैं। झगड़ालू, चिड़चिड़े, क्रोधी, व्यसनी बुरी आदतों में फँसे हुए आलसी एवं मूढ़ मति लोगों के स्वभाव में ऐसा परिवर्तन हुआ है कि लोग दाँतों तले उँगली दबाए रह गए।

गायत्री साधना के चमत्कारी लाभ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रकट होते रहते हैं। जिनके दांपत्य-जीवन बड़े कर्कश थे, पति-पत्नी में कुत्ता, बिल्ली का सा बैर रहता था, वहाँ प्रेम की निर्झरिणी बहती देखी गई। भाई-भाई जो एक-दूसरे के जानी दुश्मन बने हुए थे, उनमें भरत मिलाप हुआ। जो कुटुंब, परिवार, क्लेश और कलह की अग्नि में झुलस रहे थे,

वहाँ शांति की वर्षा हुई। फौजदारी, मुकदमेबाजी, कत्ल, चोरी, डकैती की आशंका के आक्रमण में जो लोग घिरे हुए थे, वे इन आपत्तियों से बाल-बाल बच गए।

बीमारी से तो कितने ही साधकों का पिंड छूटा है। कई तो तपेदिक की मृत्यु शय्या पर पड़े-पड़े यमराज से लड़े हैं और उनकी दाढ़ों से वे वापस लोटे हैं। भूतोन्माद, दुःस्वप्न, मूर्छा, हृदय की निर्बलता, गर्भाशय का विषैला होना आदि रोगों से कितनों ने ही मुक्ति पाई है। कोढ़ी शुद्ध हुए हैं। असंयमित जीवन क्रम और कुविचारों से उत्पन्न होने वाले स्वप्नदोष, प्रमेह आदि रोग मनःशुद्धि के साथ-साथ तुरंत कम होना आरंभ हो जाते है। दुर्बल, जीर्ण, रोगों से ग्रस्त, व्यक्तियों को वेदमाता की गोद में पहुँचकर बड़ी शांति मिलती देखी गई है। सन्निपात, शीतज्वर, हैजा, प्लेग, मोतीझरा, निमोनिया आदि कठिन रोगों में गायत्री ने चक्रसुदर्शन की तरह रक्षा की है।

चिंताओं के दबाव से जो मस्तिष्क फटते रहते थे, उन्हें निश्िंचतता और संतोष की साँस लेते हुए देखा गया है। मृत्यु, शोक, संपत्ति, नाश, ऋणग्रस्तता, बात बिगड़ जाने का भय, कन्या के विवाह का खरच, प्रियजनों का विछोह, जीविका का आश्रय टूट जाना, अपमान, असाध्य रोग, दरिद्रता, शत्रुओं का प्रकोप, बुरे भविष्य की आशंका आदि कारणों से जिन्हें हर घड़ी चिंता घेरे रहती थी, उन्हें माता की कृपा से निश्िंचतता प्राप्त हुई है या उन्हें कोई आकस्मिक सहायता मिली है या भीतरी प्रेरणा से उद्धार का कोई उपाय सूझ पड़ा है। अंतःकरण में ऐसा विवेक और आत्मबल प्रकट हुआ है, जिससे उस अवश्यंभावी अटल प्रारब्ध को हँसते-हँसते वीरतापूर्वक सहन कर लिया है।

पुरुषों की ही भाँति स्त्रियाँ भी प्रसन्नतापूर्वक गायत्री की उपासना कर सकती हैं। विधवाएं आत्म-संयम, इंद्रिय-निरोध, मनोनिग्रह एवं सात्त्विकता की वृद्धि करने में गायत्री की सहायता से सफल होती हैं। वे घर में रहकर इस तपस्या द्वारा आत्मकल्याण, प्रभु-प्राप्ति एवं जीवन मुक्ति प्राप्त कर सकती हैं। कुमारी कन्याओं की गायत्री साधना उनको अच्छे

घर, वर तथा अनंत सौभाग्य प्राप्त करने में सहायक होती है। सधवाएँ गायत्री उपासना द्वारा दांपत्य जीवन में प्रेम, घर में सुख-शांति एवं समृद्धि, बालकों का कुशल क्षेम प्राप्त करती हैं। गर्भवती स्त्रियाँ वेदमाता की उपासना करके स्वस्थ, तेजस्वी, बुद्धिमान, दीर्घजीवी एवं भाग्यवान बालक प्राप्त करती हैं।

सबसे उत्तम यह है कि निष्काम होकर अटूट श्रद्धा और भक्ति भाव से गायत्री उपासना की जाए, कोई कामना पूर्ति की शर्त न लगाई जाए, क्योंकि मनुष्य अपने वास्तविक लाभ या हानि और आवश्यकता को स्वयं उतना नहीं समझता जितना घट-घट वासिनी सर्वशक्तिमान माता समझती है। वह हमारी वास्तविक आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करती है। प्रारब्धवश कोई अटल दुर्भाग्य न भी टल सके, तो भी साधना निष्फल नहीं जाती। वह किसी न किसी अन्य मार्ग से साधक को उसके श्रम की अपेक्षा अनेक गुना लाभ अवश्य पहुँचा देती है। सबसे बड़ा लाभ आत्मकल्याण है। जो यदि संसार के समस्त दुःखों को अपने ऊपर लेने से प्राप्त होता हो, तो भी प्राप्त करने ही योग्य है।

गृही-विरक्त, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी अपनी स्थिति और सुविधा के अनुसार गायत्री माता का आश्रय लेकर अपने भीतर और बाहर फैले हुए अंधकार में प्रकाश उत्पन्न कर सकते हैं। अविश्वासी व्यक्ति परीक्षा की दृष्टि से भी कुछ समय गायत्री उपासना करके देखें, तो उनका अविश्वास विश्वास में परिणत होकर रहता है।

गायत्री जप एक आवश्यक नित्य कर्त्तव्य है। इस धर्म-कर्त्तव्य की उपेक्षा करने वालों को शास्त्रकारों ने शूद्र कहा है। मनुष्य का हाड़-माँस का शरीर माता के गर्भ से उत्पन्न होता है, किंतु आध्यात्मिक जीवन गायत्री माता के द्वारा ही मिलता है। यह दूसरा जन्म होने पर ही व्यक्ति द्विज कहलाता है। जहाँ गायत्री साधना नियमित होती है, वहाँ कल्याण की निरंतर वर्षा होती रहती है।

गायत्री साधना के नियम बहुत सरल हैं। स्नानादि से शुद्ध होकर प्रातःकाल पूर्व की ओर, सायंकाल पश्चिम की ओर मुँह करके, आसन

बिछाकर जप के लिए बैठना चाहिए। पास में जल का पात्र तथा धूपबत्ती जलाकर रख लेनी चाहिए। जल और अग्नि को साक्षी रूप से समीप रखकर जप करना उत्तम है। आरंभ में गायत्री के चित्र का पूजन अभिवादन या ध्यान करना चाहिए, पीछे जप इस प्रकार आरंभ करना चाहिए कि कंठ से ध्वनि होती रहे, होंठ हिलते रहें, पर पास बैठा हुआ भी दूसरा मनुष्य उसे स्पष्ट रूप से न सुन समझ सके। तर्जनी उंगली से माला का स्पर्श नहीं करना चाहिए। एक माला पूरी होने के बाद उसे उलट देना चाहिए। सुमेरु (बीच का बड़ा दाना) का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। कम से कम १०८ मंत्र नित्य जपने चाहिए। जप पूरा होने पर पास में रखे हुए जल को सूर्य के सामने अर्घ्य चढ़ा देना चाहिए।

रविवार गायत्री का दिन है, उस दिन उपवास या हवन हो सके तो उत्तम है। आश्विन और चैत्र की नवरात्रि में २४ हजार जप का लघु पुरश्चरण किया जाए तो उसका फल आशाजनक होता है। पूरा अनुष्ठान सवालक्ष जप का होता है, जिसे पूरा होने में चालीस दिन लगते हैं। इसके लिए हरिद्वार में भी एक संस्कारित स्थान की व्यवस्था की गई है।

हरिद्वार से ऋषिकेश जाने वाली सड़क पर हरिद्वार से छः किलोमीटर दूर शांतिकुंज नामक एक परम पुनीत तीर्थ स्थापित है। अनेक गायत्री साधक वहाँ निवास करते हैं, जिन्हें अवसर मिले इस पुण्य तीर्थ के दर्शन करने का प्रयत्न करना चाहिए। विशेष साधना करने के लिए भी यह स्थान बड़ा शांतिदायक है।

गायत्री महामंत्र द्वारा अनेक प्रकार की अनेक साधनाएँ होती हैं। अनेक बीज मंत्र ऐसे हैं; जिन्हें गायत्री के साथ लगाकर जप करने से विशेष परिणाम होते हैं। सरदी प्रधान (कफ) रोगों के निवारण में 'ऐं' बीज का मंत्र का, गरमी प्रधान (पित्त) रोगों को दूर करने के लिए 'ऐं' बीज का मंत्र और अपच (वात) रोगों में 'हुँ' बीज का उपयोग किया जाता है। गायत्री से अभिमंत्रित जल पिलाने या मार्जन करने से बीमार को तुरंत शांति मिलती है। भयंकर सर्प काटने पर मृत्यु का भय सामने खड़ा हो या बिच्छू आदि विषैले जीव के काट लेने पर किसी को भारी

पीड़ा हो, तो पीपल वृक्ष की समिधाओं से किए हुए गायत्री हवन की भस्म को 'हुँ' संपुट सहित गायत्री मंत्र के साथ काटे हुए स्थान पर लगाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है। रक्त चंदन की भस्म एवं पीली सरसों का ऐसे अवसरों पर प्रयोग किया जाता है। बुद्धि को सात्त्विक एवं तीव्र करने के लिए प्रात:काल सूर्य का दर्शन करते हुए तीन बार 'ॐ' का उच्चारण करते हुए गायत्री मंत्र जपते हैं और सूर्य संतापित हथेलियों को नेत्र, ग्रीवा, कान, मस्तक आदि शिरोभागों पर लगाते हैं। राजद्वार में सफलता पाने के लिए सप्त व्याहृतियों के साथ जप किया जाता है। और जो स्वर चल रहा है उसी हाथ के अँगूठे के नाखून पर दृष्टि रखी जाती है, दरिद्रता नाश के लिए 'श्रीं' बीज का संपुट और साधन में रजोगुण प्रधान पूजा सामग्री का प्रयोग होता है। शत्रुता का संहार करने के लिए 'क्लीं' बीज सहित रक्त चंदन की माला पर जप और रक्तवर्ण माता का ध्यान करते हैं। भूत बाधा निवारण के लिए गायत्री यज्ञ की भस्म तथा हवन में तपाए हुए जल को पिलाना बड़ा उपयोगी है। परस्पर के विरोध को शांत करके उसे मित्रता में परिणत करने के लिए पति-पत्नी को 'यं' बीज तीन बार लगा कर चंदन की माला पर जप करना होता है। इसी प्रकार अनेक सकाम प्रयोजनों के लिए अनेक साधनाएँ हैं।

गायत्री द्वारा तांत्रिक वाममार्गी साधनाएँ भी हो सकती हैं और जो चमत्कार अन्य मंत्रों से होते हैं, वे सब भी आसानी के साथ हो सकते हैं। पर इस महाविद्या का ऐसे तुच्छ प्रयोजनों में प्रयोग करना उचित नहीं। गायत्री साधक को थोड़े ही दिनों में अनेक छोटी-मोटी सिद्धियों की सफलताएँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं, पर उनको दूसरों पर प्रकट करना या तुच्छ कार्यों में प्रयोग करना ठीक नही, क्योंकि ऐसा करने से आगे की उन्नति रुक जाती है। यदि मनुष्य निश्चित रीति से शांत चित्त से गायत्री उपासना करता रहे, तो वह एक ही जन्म में भव-बंधन से पार होकर जीवन लक्ष पूर्ण करता हुआ ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त कर सकता है।

चौबीस गायत्री

गायत्री के २४ अक्षर यथार्थ में २४ शक्ति-बीज हैं। पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश यह पाँच तत्त्व तो प्रधान हैं ही, इनके अतिरिक्त २४ तत्त्व हैं, जिनका वर्णन सांख्य दर्शन में किया गया है। इस सृष्टि के २४ तत्त्वों का गुंफन करके एक सूक्ष्म आध्यात्मिक शक्ति का आविर्भाव किया गया, जिसका नाम गायत्री रखा गया है।

गायत्री के २४ अक्षर चौबीस मातृकाओं की महाशक्तियों के प्रतीक हैं। उनका पारस्परिक गुंथन ऐसे वैज्ञानिक क्रम से हुआ है कि इस महामंत्र का उच्चारण करने मात्र से शरीर के विभिन्न भागों में अवस्थित चौबीस बड़ी ही महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ जाग्रत होती हैं।

मार्कण्डेय पुराण में शक्ति के अवतार की कथा इस प्रकार है कि सब देवताओं ने अपना-अपना तेज एकत्रित किया और वह एकत्रित तेज-केंद्र 'शक्ति' के रूप में अवतीर्ण हुआ। देवता उन तत्त्व शक्तियों का नाम है, जो सृष्टि के निर्माण, पोषण एवं संहार का मूल कारण है। रसायन विज्ञान का नियम है कि क्रियाशील पदार्थों के सम्मिलन से नए पदार्थ बनते हैं। रज और वीर्य के सजीव परमाणु जब मिलते हैं, तो एक मूर्तिमान गर्भ का आभिर्भाव होता है। गंधक और पारा मिलकर कजली बन जाती है, दूध और खटाई मिलकर दही बनता है। ऋण और धन परमाणु मिलकर बिजली की शक्तिशाली धारा के रूप में परिणत हो जाते हैं। २४ सूक्ष्म तत्त्वों के-२४ सूक्ष्म शक्तियों के सम्मिलन से एक ऐसी अद्‌भुत विद्युत धारा उत्पन्न होती है, जिसकी सामर्थ्यों का वर्णन करना कठिन है। मारकण्डेय पुराण का शक्ति अवतार और उस अवतार की आश्चर्यजनक क्रियाशीलता इसी तथ्य पर प्रकाश डालती है।

एक विशेष पर्वतीय प्रदेश की भूमि, वहाँ की वायु, वहाँ की वनस्पतियाँ और रासायनिक पदार्थों के सम्मिश्रण के कारण गंगोत्री से आरंभ होने वाला जल एक विशेष प्रकार के अद्‌भुत गुणों वाला बन गया है। इसी प्रकार चौबीस अक्षरों से उपयोगी तत्त्वों का कारणवश सम्मिश्रण हो जाने से अंतरिक्ष-आकाश में एक विद्युन्मयी सूक्ष्म सरिता बह निकली।

इस आध्यात्मिक-गंगा का नाम 'गायत्री' रखा गया। जिस प्रकार गंगा नदी में स्नान करने से शारीरिक एवं मानसिक स्वस्थता प्राप्त होती है, उसी प्रकार उस आकाशवाहिनी विद्युन्मयी गायत्री शक्ति की समीपता से आंतरिक एवं बाह्य बल तथा वैभवों की उपलब्धि होती है।

सृष्टि के उत्पादक तत्त्व चैतन्यता रहित कहे जाते हैं, यह अचैतन्य उसका स्थूल रूप है। पर अचेतन के पीछे भी एक प्रेरणा रहती है, क्योंकि बिना प्रेरणा के कोई अचेतन वस्तु कार्य नहीं कर सकती । रेल, मोटर, जहाज, तार, बम, तोप, आदि को चलाने वाला कोई न कोई होता है। ये इतने शक्तिशाली होते हुए भी कुछ कार्य स्वयं नहीं कर सकते। इन यंत्रों को चलाने के लिए यह आवश्यक है कि कोई चैतन्य प्राणी इनका संचालन करे। इसी प्रकार तत्त्वों को क्रियाशील रहने के लिए यह आवश्यक है कि उनके पीछे कोई चैतन्य शक्ति कार्य करती हो। अध्यात्म विद्या के भारतीय वैज्ञानिक सदा से यह मानते आए हैं कि प्रत्येक तत्त्व के पीछे एक चैतन्य शक्ति, प्रेरक सत्ता के रूप में विद्यमान है। उस प्रेरक शक्ति से संबंध स्थापित करके उन पदार्थों का लाभ उठाया जा सकता है, जिन पर उस शक्ति का आधिपत्य है। इन प्रेरित शक्तियों को भारतीय विज्ञानवेत्ताओं ने देवता नाम दिया है।

पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल आदि की पूजा के लिए वेदोक्त और पुराणोक्त प्रक्रियाएँ मिलती हैं। क्या यह लोहा, लकड़ी, पानी, आग, हवा आदि की पूजा है? क्या हमारे ऋषि-मुनि इतने मूर्ख थे, जो यह भी नहीं जानते थे कि इन निर्जीव वस्तुओं के पूजन से लाभ होना असंभव है? ऐसा सोचने से काम न चलेगा। भारतीय वैज्ञानिकों ने बहुत ऊँची शोध की थी। आज के भौतिक विज्ञानी जहाँ अपने विज्ञान की अंतिम सीमा समझते हैं, वहाँ से भारतीय ऋषियों की शोधों का आरंभ होता है, उनको मिट्टी, पत्थर पूजने वाला मूर्ख समझने की गलती हमें नहीं करनी चाहिए। वस्तु स्थिति यह है कि एक प्रकार के गुण, शक्ति, स्वभाव, प्रवृत्ति एवं स्थिति के परमाणु समूह तत्त्वों में रहते

हैं और तत्त्व के पीछे एक प्रेरक शक्ति काम करती है, जो ईश्वरीय अनुशासन के नाम से पुकारी जाती है। यह प्रेरक, नियामक, उत्पादक, संचालक एवं विध्वंसक सत्ता अपने क्षेत्र की अधिपति है। उसका आधिपत्य अपने क्षेत्र में अक्षुण्ण है। उसी का नाम देवता है।

इन देवताओं की अपनी-अपनी कार्य-प्रणाली, अपनी-अपनी मर्यादा होती है। जहाँ उनके पदार्थ एवं परमाणुओं संबंधी क्रियाएँ होती हैं, वहाँ गुण और स्वभाव संबंधी शक्तियाँ भी हैं, इन देवताओं का अपना एक गुण और स्वभाव भी है। जिस देवता से उपासना विधि द्वारा संबंध स्थापित किया जाता है, उसके गुण और स्वभाव के साथ भी संबंध स्थापित किया जाता है। इस प्रकार वह देव उपासक, अपने उपास्य देव के गुण और स्वभाव को प्राप्त करता है। साथ ही जिन पदार्थों पर उस देवशक्ति का आधिपत्य है, वे भी उसे किसी न किसी मार्ग से अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगते हैं।

इन देव-शक्तियों तक पहुँचने के लिए, उन्हें पकड़ने के लिए, उनके साथ संबंध स्थापित करने के लिए साधना-विज्ञान के आचार्यों ने समाधि अवस्था में पहुँचकर अपनी ध्यान चेतना को अंतरिक्ष लोक में फेंका। उनकी अंत:चेतना ने देव-शक्तियों से सबंद्ध होते हुए जो अनुभव किए उन अनुभवों को योगीजनों ने देवता का रूप घोषित कर दिया। मनुष्य के मस्तिष्क का निर्माण इस प्रकार हुआ है कि उससे कोई भी वस्तु टकराए तो उसका रूप अवश्य ध्यान में आएगा। कोई वस्तु साकार हो या निराकार, पर यदि मस्तिष्क से उसके संबंध में कुछ सोचना पड़ा, तो वह उसका कोई न कोई रूप निर्धारित करेगा। बिना रूप की स्थापना हुए मस्तिष्क उसके संबंध में किसी प्रकार के विचार या धारणा करने में असमर्थ होता है। साकार वस्तुओं को देखने या सुनने के आधार पर उन का कोई रूप मस्तिष्क में बन जाता है। वह निराकार वस्तुओं का आकार अपनी कल्पना के आधार पर गढ़ता है, परंतु यह कल्पना भी किसी न किसी आधार पर चलती है। देवताओं का आकार निर्धारित करने का कार्य योग के आचार्यों ने किया है, उनके मस्तिष्क ने

अंतरिक्ष लोक में फैली हुई देव-शक्तियों से संबंध होते समय जो रूप बनते देखा उसे ही देव रूप माना।

यह देव रूप एक माध्यम है कि जिसको पकड़ कर आसानी के साथ उन देवशक्तियों से संबंध स्थापित किया जा सकता है। देवशक्तियों से संबंध होने पर जो चित्र मन में आता है यदि आरंभ में ही उस चित्र को मन में धारण कर लिया जाए, तो उस शक्ति से सबंद्ध होने का कार्य भी सुविधापूर्वक पूरा किया जा सकता है। देवताओं के रूप का ध्यान करना इस दिशा में प्रधान साधना है। इसलिए आचार्यों ने प्रत्येक देवता का रूप अपनी अनुभव साधना के आधार पर निर्धारित कर दिया है।

यहाँ यह भी भलीभाँति ध्यान रखना चाहिए कि देवता कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। एक ही परमात्मा की विविध शक्तियों का नाम ही देवता है। जैसे सूर्य के विविध गुणों वाली किरणें अल्ट्रा वायलेट, अल्फा, पारदर्शी, मृत्यु किरण आदि अनेक नामों से पुकारी जाती है, उसी प्रकार अनेक कार्य और गुणों के कारण ईश्वरीय शक्तियाँ भी देव नामों से पुकारी जाती हैं। सूर्य की प्रातःकालीन, मध्याह्नकालीन, संध्याकालीन किरणों के गुण भिन्न-भिन्न हैं, इसी प्रकार गरमी, वर्षा और शीतकाल में किरणों के गुणों में अंतर पड़ जाता है। सूर्य एक ही है पर प्रदेश, ऋतु और काल के भेद से उसका गुण भिन्न-भिन्न हो जाता है। ईश्वर की शक्तियों में उसी प्रकार की विभिन्नताओं के होने के कारण उनके नाम विभिन्न प्रकार के रखे गए हैं।

गायत्री में २४ शक्तियाँ गुंफित हैं। साधारणतः गायत्री की उपासना करने से उन २४ शक्तियों का यथोचित मात्रा में लाभ मिलता है। दूध में सभी पोषक तत्त्व होते हैं, दूध पीने वाले को उन सभी तत्त्वों का यथोचित मात्रा में लाभ मिलता जाता है, परंतु यदि किसी को किसी विशेष तत्त्व की आवश्यकता होती है, तो वह उसके किसी विशेष भाग का ही खासतौर से सेवन करता है। किसी को दूध के चिकनाई वाले भाग की आवश्यकता होती है, तो वह 'घी' निकाल कर उसका सेवन करता है और बाकी अंश

को छोड़ देता है। किसी को छाछ की अधिक आवश्यकता है, तो वह दूध के छाछ वाले अंश को लेकर अन्य भागों को छोड़ देता है। रोगियों को दूध फाड़कर उसका पानी मात्र देते हैं। इसी प्रकार किसी विशेष व्यक्ति को गायत्री में रहने वाली अनेक देव शक्तियों में से किसी विशेष की आवश्यकता होती है तो वह उसी की आराधना करता है। अपनी प्रमुख आवश्यकता की वस्तु के लिए अधिक श्रम करता है।

इस दृष्टि से काम करने के लिए पृथक-पृथक साधनाएँ बनाई गई हैं। इन पद्धतियों को 'चौबीस गायत्री साधना' कहते हैं। गायत्री मंत्र-ग्रंथों में चौबीस देवताओं की चौबीस गायत्री लिखी हुई हैं। उनका संक्षिप्त-सा साधन विधान भी है। उन सबके ऊपर सूक्ष्म दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि विविध कामनाओं की पूर्ति के लिए सृष्टि के प्रधान चौबीस तत्त्वों की प्रेरक शक्तियों का उपयोग करने का विधि विधान है।

भारतीय योग विज्ञान की क्रिया-पद्धति यह है कि वह परमाणुओं एवं तत्त्वों का ऊहापोह उस तरह नहीं करती, जिस प्रकार कि वर्तमान काल के भौतिक विज्ञानी करते हैं। वैज्ञानिक अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिए तत्त्वों और परमाणुओं को पकड़ते हैं। इस पकड़ के लिए उन्हें बहुत श्रम और धन से बनने वाली, बार-बार टूटने-फूटने वाली मशीनों की आवश्यकता होती है। योग-विज्ञान इस सतह से कहीं ऊँची सतह पर काम करता है। वह तत्त्वों और परमाणुओं की पीठ पर काम करने वाली प्रेरक एवं चैतन्य देव शक्ति को पकड़ता है और उससे अपना मनोरथ पूरा करता है। इस पकड़ के लिए उन लोहे की मशीनों की आवश्यकता नहीं होती वरन वह मानव शरीर, मस्तिष्क एवं अंतःकरण की अद्भुत, अलौकिक, असाधारण एवं अनंत शक्तिशाली मशीन का उपयोग करता है। ईश्वर ने जितनी सर्वांगपूर्ण मशीन 'मनुष्य देह' बनाई है, उतनी संपूर्ण सामर्थ्यों वाली, संपूर्ण प्रयोजनों में प्रयुक्त हो सकने वाली मशीनें आज तक किसी भी वैज्ञानिक द्वारा नहीं बनाई जा सकी हैं और न भविष्य में इस प्रकार की कोई संभावना ही है। भारतीय वैज्ञानिकों ने नई-नई मशीनें बनाने के झंझट

से बचकर इस एक ही मशीन से सब सूक्ष्म प्रयोजनों को पूरा करने की क्रिया निकाली थी।

रेडियो यंत्र की सुई घुमाने से उन विविध स्थानों की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं जो आपस में बहुत दूर और बहुत भिन्न हैं। सुई के घुमाने से यंत्र के भीतर ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि पहले उसके भीतर जो गतिविधि काम कर रही थी, वह बंद हो जाती है और नए प्रकार की गतिविधि आरंभ हो जाती है, इससे पहले जिस स्टेशन की ध्वनियाँ सुनाई पड़ रही थीं, वे बंद होकर नया स्टेशन सुनाई पड़ने लगता है। मनुष्य शरीर की स्थिति को भी साधनात्मक कर्मकांडों द्वारा इसी प्रकार परिवर्तित कर दिया जाता है कि वह कभी किसी देव शक्ति के और कभी अन्य देव शक्ति के अनुकूल बन जाता है। साधनाकाल में साधक के रहन-सहन, आचार-विचार, दिनचर्या, विचार, चिंतन, संयम, कर्मकांड आदि के ऐसे प्रबंध एवं नियंत्रण कायम किए जाते हैं, जिसके कारण उनकी मनोभूमि एक विशेष दिशा में काम करने योग्य बन जाती है। साधन काल के नियमोपनियमों का प्रतिबंध या नियंत्रणों का कोई साधक पूरी तरह पालन करे तो उसकी मशीन इतनी सूक्ष्म हो जाएगी कि इच्छित देव-शक्ति से संबंध स्थापित कर सके। इसलिए अध्यात्म विद्या के पथ-प्रदर्शक अपने शिष्यों को साधनाकाल में आवश्यक संयम-प्रतिबंधों का पालन करने के लिए विशेष रूप से सावधान करते रहते हैं।

स्थूल शरीर में दोनों हाथ इस प्रकार के अवयव हैं, जिनकी सहायता से वस्तुओं को पकड़ा जाता है। सूक्ष्म शरीर के भी इसी प्रकार दो हाथ हैं जिनके द्वारा परमाणु तत्त्वों की प्रकृति से ऊपरी सतह पर-परब्रह्म लोक में भ्रमण करने वाली देव शक्तियों को पकड़ा जाता है। इन सूक्ष्म हाथों का नाम है-श्रद्धा और विश्वास। श्रद्धा और विश्वास के कारण मानव अंतःकरण की बिखरी हुई शक्तियाँ एक स्थान पर एकत्रित हो जाती हैं। इस एकीकरण को जिस दिशा में प्रेरित किया जाता है, उसी में वह बड़ी द्रुतगति से दौड़ता है। थोड़ी-सी बारूद और सीसे की गोलियों की पुड़ियों (कारतूस) को बंदूक की नाल में भरते हैं, इस पुड़िया को

चिनगारी लगाकर एक बंदूक की नली की सहायता से एक विशेष दिशा में उड़ाते हैं। निशाना सीधा होने पर वह गोली अभीष्ट स्थान पर प्रहार करती है और लक्ष्य को वेध देती है। योग साधना में भी यही होता है। आहार-विहार का, दिनचर्या का प्रतिबंध बंदूक बनाना है, उसमें श्रद्धा और विश्वास का होना गोली व बारूद डाला जाना है। साधना विधि उसमें चिनगारी लगाना है। इस प्रकार जो लक्ष्य वेध किया जाता है, वह मनोवांछित परिणाम उपस्थित करता है। चंद्रलोक और मंगल ग्रह की यात्रा करने की तेयारी में जो वैज्ञानिक लगे हुए हैं, वे ऐसी तोप तैयार कर रहे हैं जो अत्यंत दूरी पर निशाना फेंक सकें। उस तोप में ऐसा गोला रखा जाएगा जिसमें यात्री लोग बैठ सकें। यह गोला चंद्र या मंगल तक उन्हें पहुँचा देगा, ऐसी उनकी मान्यता है। वह प्रयोग कहाँ तक सफल होगा, यह तो भविष्य बताएगा पर भूतकाल में यह भली प्रकार साबित हो चुका है कि योग साधना रूपी लक्ष्यवेध उपरोक्त विधि-विधान के आधार पर देव शक्तियों के साथ टकराता है, उन्हें पकड़ता है और उन्हें मनुष्य के लिए उसी प्रकार प्रस्तुत कर देता है, जिस प्रकार आज के वैज्ञानिकों ने बिजली, भाप आदि की शक्तियों को मनुष्य की सुख-साधना के लिए लगा दिया है। योग साधक अपनी देह की शक्ति को सुसंचालित करके देव-शक्तियों तक पहुँचते हैं और उनसे वे लाभ, वरदान प्राप्त करते हैं, जिनकी उन्हें आवश्यकता होती है। हमारे इतिहास, पुराण पग-पग पर इस महासत्य की साक्षी देते हैं।

विज्ञान का मार्ग एक होते हुए भी उनके साधन मार्गों में अंतर होता है तथा हो सकता है। रेडियो का विज्ञान एक है, पर रेडियो यंत्रों की बनावट, हर बनाने वाला अलग-अलग रखता है। घड़ियों और मोटरों के पुर्जों में भी इसी प्रकार का हेर-फेर हुआ करता है। इस प्रकार के अंतर होते हुए भी इन विविध आकृति के यंत्रों से लाभ एक-सा ही मिलता है। योग साधना के अनेक मार्ग हैं, उनमें से एक मार्ग 'गायत्री मार्ग' भी है। गायत्री की साधना-पद्धति द्वारा भी उन सूक्ष्म देव शक्तियों से साधक अपने को संबंद्ध कर सकता है और अभीष्ट लाभ उठा सकता है।

गायत्री के तंत्र ग्रंथों में २४ गायत्रियों का वर्णन है। चौबीस देवताओं के लिए एक-एक गायत्री है। इस प्रकार २४ गायत्रियों द्वारा २४ देवताओं से संबंध स्थापित किया गया है।

गायत्री मंत्र के २४ अक्षरों में से प्रत्येक के देवता क्रमशः (१) गणेश (२) नृसिंह (३) विष्णु (४) शिव (५) कृष्ण (६) राधा (७) लक्ष्मी (८) अग्नि (९) इंद्र (१०) सरस्वती (११) दुर्गा (१२) हनुमान (१३) पृथ्वी (१४) सूर्य (१५) राम (१६) सीता (१७) चंद्रमा (१८) यम (१९) ब्रह्मा (२०) वरुण (२१) नारायण (२२) हयग्रीव (२३) हंस (२४) तुलसी हैं। यद्यपि इनमें से कई नामों के मनुष्य, अवतार, ग्रह, नक्षत्र, तत्त्व, पक्षी, वृक्ष आदि भी हुए और चरित्र भी उपलब्ध होते हैं, पर यहाँ स्मरण रखना चाहिए कि ऊपर जिन नामों का उल्लेख है उनका प्रयोग तंत्र विज्ञान में विशुद्ध देव शक्तियों के रूप में होता है। इन देव शक्तियों की छाया लेकर मनुष्य, ग्रह, तत्त्व, पक्षी, वृक्ष आदि जो हुए हैं वे इन शक्तियों के या तो स्थूल प्रतीक हैं या अलंकारिक विवेचन—हंस पक्षी, तुलसी का पौधा, सूर्य, चंद्र, ग्रह, अग्नि, वरुण आदि तत्त्व, राम, कृष्ण, सीता, राधा, हनुमान आदि अवतारी पुरुष उन देव शक्तियों के स्थूल प्रस्फुरण हैं। वस्तुतः वे शक्तियाँ अत्यंत सूक्ष्म और ईश्वरीय सूर्य की किरणें हैं। २४ गायत्री द्वारा उन २४ किरणों से ही सान्निध्य स्थापित किया जाता है।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि देवशक्तियाँ स्वचैतन्य हैं और अपनी मर्यादा में परमाणुओं, तत्त्वों, पदार्थों पर शासन करती हैं। इसलिए वे भौतिक और आत्मिक दोनों ही सत्ताओं से संपन्न हैं। देव-उपासना से मनुष्य को उस प्रकार के गुण प्राप्त होते हैं। साथ ही उनके शासन में रहने वाले पदार्थ भी उसी ओर खिंच्च-खिंचकर जमा होते हैं। मधुमक्खियों के छत्ते में एक शासक मक्खी होती है, वह जिधर चलती है उधर ही छत्ते की अन्य सब मक्खियाँ चल देती हैं। जहाँ चुंबक होता है, वहाँ लोहे के कण स्वयमेव खिंच आते हैं। शक्ति अपने आधार को अपनी ओर खिंचती रहती है। जिस मनुष्य ने देव शक्ति की जितनी धारणा अपनी मनोभूमि में

कर ली है, उसी अनुपात से उस शक्ति से संबंधित परिस्थितियाँ एवं वस्तुएँ उसकी ओर खिंचती चली आएँगी और वह उपासना का समुचित लाभ प्राप्त करेगा।

गायत्री के चौबीस देवताओं की चैतन्य शक्तियाँ क्या हैं और उन शक्तियों के द्वारा क्या-क्या लाभ मिल सकते हैं? इसका विवरण नीचे दिया जाता है—

१. **गणेश**-सफलता शक्ति। फल—कठिन कामों में सफलता, विघ्नों का नाश, बुद्धि वृद्धि।

२. **नृसिंह**-पराक्रम शक्ति। फल—पुरुषार्थ, पराक्रम, वीरता, शत्रु नाश, आतंक, आक्रमण से रक्षा।

३. **विष्णु**-पालन शक्ति। फल—प्राणियों का पालन, आश्रितों की रक्षा, योग्यताओं की वृद्धि, रक्षा।

४. **शिव**-शिव शक्ति। फल—अनिष्ट का विनाश, कल्याण की वृद्धि, निश्चयता, आत्म-परायणता।

५. **कृष्ण**-योग शक्ति। फल-क्रियाशीलता, आत्म-निष्ठा, अनाशक्ति, कर्मयोग, सौंदर्य, सरसता।

६. **राधा**-प्रेम शक्ति। फल—प्रेम दृष्टि, द्वेष-भाव की समाप्ति।

७. **लक्ष्मी**-धन शक्ति। फल—धन, पद, यश और भोग्य पदार्थों की प्राप्ति।

८. **अग्नि**-तेज शक्ति। फल—उष्णता, प्रकाश, शक्ति और सामर्थ्य की वृद्धि, प्रभावशाली, तेजस्वी होना।

९. **इंद्र**-रक्षा शक्ति। फल—रोग, हिंसक, चोर, शत्रु, भूत-प्रेत अनिष्ट आदि आक्रमणों से रक्षा।

१०. **सरस्वती**-बुद्धि शक्ति। फल—मेधा की वृद्धि, बुद्धि की पवित्रता, चतुरता, दूरदर्शिता, विवेकशीलता।

११. **दुर्गा**-दमन शक्ति। फल—विघ्नोंपर विजय, दुष्टों का दमन, शत्रुओं का संहार, दर्प की प्रचंडता।

१२. **हनुमान**-निष्ठा शक्ति। फल—कर्त्तव्य परायणता, निष्ठावान, विश्वासी, ब्रह्मचारी एवं निर्भय होना।

१३. पृथ्वी-धारण शक्ति। फल—गंभीरता, क्षमाशीलता, सहिष्णुता, दृढ़ता, धैर्य, भार-वहन करने की क्षमता।

१४. सूर्य-प्राण शक्ति। फल—निरोगता, दीर्घजीवन, विकास वृद्धि, उष्णता, विकारों का शोधन।

१५. राम-मर्यादा शक्ति। फल—तितिक्षा, कष्ट में विचलित न होना, धर्म मर्यादा, सौम्यता, संयम मैत्री।

१६. सीता-तप शक्ति। फल-निर्विकार, पवित्रता,मधुरता, सात्त्विकता, शील, नम्रता।

१७. चंद्रमा-शांति शक्ति। फल—उद्विग्नताओं की शक्ति, शोक, क्रोध, चिंता, प्रतिहिंसा आदि विक्षोभों का शमन, काम, लोभ, मोह एवं तृष्णा का निवारण, निराशा के स्थान पर आशा का संचार।

१८. यम-काल शक्ति। फल—समय का सदुपयोग, मृत्यु से निर्भयता, निरालस्यता, स्फूर्ति, जागरूकता।

१९. ब्रह्मा-उत्पादक शक्ति। फल—उत्पादक शक्ति की वृद्धि। वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना, संतान बढ़ाना, पशु, कृषि, वृक्ष, वनस्पति आदि में उत्पादन की मात्रा बढ़ना।

२०. वरुण-रस शक्ति। फल—भावुकता, सरलता, कलाप्रियता, कवित्व, आर्द्रता, दया, दूसरों के लिए द्रवित होना, कोमलता, प्रसन्नता, माधुर्य सौंदर्य।

२१. नारायण-आदर्श शक्ति। फल—महत्त्वाकांक्षा, श्रेष्ठता, उच्च आकांक्षा, दिव्य गुण, दिव्य स्वभाव, उज्ज्वल चरित्र, पथ-प्रदर्शक कार्य-शैली।

२२. हयग्रीव-साहस शक्ति। फल—उत्साह, साहस, वीरता, शूरता, निर्भयता, कठिनाइयों से लड़ने की अभिलाषा, पुरुषार्थ।

२३. हंस-विवेक शक्ति। फल—उज्ज्वल कीर्ति, आत्म-संतोष, सत्-असत् निर्णय, दूरदर्शिता, सत्संगति, उत्तम आहार-विहार।

२४. तुलसी-सेवा शक्ति। फल—सेवा में प्रवृत्ति, सत्त्व प्रधानता, पतिव्रत, पत्नीव्रत, आत्म-शांति, परदुःख निवारण।

जिसे अपने में जिस शक्ति की, जिस गुण, कर्म स्वभाव की कमी या विकृति दिखाई पड़ती हो, उसे उस शक्ति वाले देवता की उपासना विशेष रूप से करनी चाहिए। जिस देवता की जो गायत्री है, उसका दशांश जप गायत्री साधना के साथ-साथ करना चाहिए। जैसे कोई व्यक्ति यदि संतानहीन है, संतान की कामना करनी चाहिए। यदि गायत्री की दस मालाएँ नित्य जपी जाएँ, तो एक माला ब्रह्म गायत्री की भी जपनी चाहिए। मात्र ब्रह्म गायत्री को भी जपने से काम न चलेगा, क्योंकि ब्रह्म गायत्री की स्वतंत्र सत्ता इतनी बलवती नहीं है। देव गायत्रियाँ उस महान वेदमाता गायत्री की छोटी-छोटी शाखाएँ तभी तक हरी-भरी रहती हैं, जब तक वे मूल वृक्ष के साथ जुड़ी हुई हैं। वृक्ष से अलग कट जाने पर शाखा निष्प्राण हो जाती है, उसी प्रकार अकेली देव गायत्री भी निष्प्राण होती है उनका जप महा गायत्री के साथ ही करना चाहिए।

आरंभ में देव गायत्री का जप करना चाहिए। साथ ही उस देवता का ध्यान करते जाना चाहिए और ऐसी भावना करनी चाहिए कि वह देवता हमारे अभीष्ट परिणाम को प्रदान करेंगे। नीचे चौबीस देवताओं की गायत्रियाँ दी जाती हैं, इनके जप से उन देवताओं के साथ विशेष रूप से संबंध स्थापित होता है और उनसे संबंध रखने वाले गुण, पदार्थ एवं अवसर साधक प्राप्त कर सकते हैं।

१. **गणेश गायत्री**-ॐ एक दंष्ट्राय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो बुद्धिः प्रचोदयात्।

२. **नृसिंह गायत्री**-ॐ नृसिंहाय विद्महे, वज्र नखाय धीमहि। तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात्।

३. **विष्णु गायत्री**-ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

४. **शिव गायत्री**-ॐ पञ्चवक्त्राय विद्महे, महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

५. **कृष्ण गायत्री**-ॐ देवकीनन्दनाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि। तन्नो। कृष्णः प्रचोदयात्।

६. **राधा गायत्री**-ॐ वृषभानुजायै विद्महे, कृष्णाप्रियायै धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्।

७. **लक्ष्मी गायत्री**-ॐ महालक्ष्म्यै विद्महे, विष्णुप्रियायै धीमहि। तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्।

८. **अग्नि गायत्री**-ॐ महाज्वालाय विद्महे, अग्निदेवाय धीमहि। तन्नो अग्निः प्रचोदयात्।

९. **इन्द्र गायत्री**-ॐ सहस्रनेत्राय विद्महे, वज्रहस्ताय धीमहि। तन्नो इन्द्रः प्रचोदयात्।

१०. **सरस्वती गायत्री**-ॐ सरस्वत्यै विद्महे, ब्रह्मपुत्र्यै धीमहि। तन्नो देवी प्रचोदयात्।

११. **दुर्गा गायत्री**-ॐ गिरजायै विद्महे, शिवप्रियायै धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्।

१२. **हनुमान गायत्री**-ॐ अंजनीसुताय विद्महे, वायुपुत्राय धीमहि। तन्नो मारूतिः प्रचोदयात्।

१३. **पृथ्वी गायत्री**-ॐ पृथ्वीदेव्यै, सहस्रमूर्त्यै धीमहि। तन्नो पृथ्वी प्रचोदयात्।

१४. **सूर्य गायत्री**-ॐ भास्कराय विद्महे, दिवाकराय धीमहि। तन्नो सूर्यो: प्रचोदयात्।

१५. **राम गायत्री**-ॐ दाशरथये विद्महे, सीतावल्लभाय धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात्।

१६. **सीता गायत्री**-ॐ जनकनन्दिन्यै विद्महे, भूमिजायै धीमहि। तन्नो सीता प्रचोदयात्।

१७. **चन्द्र गायत्री**-ॐ क्षीरपुत्राय विद्महे, अमृततत्वाय धीमहि। तन्नो चन्द्रः प्रचोदयात्।

१८. **यम गायत्री**-ॐ सूर्यपुत्राय विद्महे, महाकालाय धीमहि। तन्नो यमः प्रचोदयात्।

१९. **ब्रह्म गायत्री**-ॐ चतुर्मुखाय विद्महे, हंसारूढाय धीमहि। तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्।

२०. **वरुण गायत्री**–ॐ जलबिम्बाय विद्महे, नीलपुत्राय धीमहि। तन्नो नारायणः प्रचोदयात्।

२१. **नारायण गायत्री**–ॐ नारायण विद्महे, वासुदेवाय धीमहि। तन्नो नारायणः प्रचोदयात्।

२२. **हयग्रीव गायत्री**–ॐ वाणीश्वराय विद्महे, हयग्रीवाय धीमहि। तन्नो हयग्रीवः प्रचोदयात्।

२३. **हंस गायत्री**–ॐ परमहंसाय विद्महे, महाहंसाय धीमहि। तन्नो हंसः प्रचोदयात्।

२४. **तुलसी गायत्री**–ॐ श्री तुलस्यै विद्महे, विष्णुप्रियायै धीमहि। तन्नो वृन्दा प्रचोदयात्।

इन देव शक्तियों के साथ व्याहृतियाँ लगाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे वेदोक्त नहीं, तंत्रोक्त हैं। यों तो उपरोक्त देव-शक्तियों के साथ संबंध स्थापित करने के स्वतंत्र एवं विशिष्ट विधान हैं, जो साधन ग्रंथों में सविस्तार वर्णित हैं, उन साधनाओं से संपूर्ण प्रगति उसी दिशा में होती है। यहाँ उस विस्तृत विधान का वर्णन करना आवश्यक नहीं। यहाँ तो इन देवशक्तियों एवं उनकी गायत्रियों का वर्णन इसलिए किया गया है कि वेदमाता की सर्व फलदायिनी साधना में भी किसी विशेष तत्त्व को बढ़ाकर किसी विशेष उद्देश्य के लिए एक अतिरिक्त प्रयत्न भी साथ में जोड़ा जा सके।

गायत्री का शाप विमोचन और उत्कीलन का रहस्य

गायत्री की महिमा गाते हुए शास्त्र और ऋषि-महर्षि थकते नहीं। इसकी प्रशंसा तथा महत्ता के संबंध में जितना कहा गया है, उतना शायद ही और किसी की प्रशंसा में कहा गया हो। प्राचीन काल में बड़े-बड़े तपस्वियों ने प्रधान रूप से गायत्री की ही तपश्चर्याएँ, अभीष्ट सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। शाप और वरदान के लिए वे विविध-विधियों से गायत्री का ही उपयोग करते थे।

प्राचीन काल में गायत्री गुरुमंत्र था, आज गायत्री मंत्र प्रसिद्ध है। अधिकांश मनुष्य उसे जानते हैं। अनेक मनुष्य किसी न किसी प्रकार उसको दुहराते या जपते रहते हैं अथवा किसी विशेष अवसर पर स्मरण कर लेते हैं। इतने पर भी देखा गया है कि उससे कोई विशेष लाभ नहीं होता। गायत्री जानने वालों में कोई विशेष स्तर दिखाई नहीं देता। इस आधार पर यह आशंका होने लगती है—कहीं गायत्री की प्रशंसा और महिमा वर्णन करने वालों ने अत्युक्ति तो नहीं की? कई मनुष्य आरंभ में उत्साह दिखाकर थोड़े ही दिनों में उसे छोड़ बैठते हैं, वे देखते हैं कि इतने दिन हमने गायत्री की उपासना की, पर लाभ कुछ न हुआ। फिर क्यों इसके लिए समय बरबाद किया जाए। कारण यह है कि प्रत्येक कार्य एक नियत विधि-व्यवस्था द्वारा पूरा होता है। चाहे जैसे, चाहे जिस काम को, चाहे जिस प्रकार करना आरंभ कर दिया जाए, तो अभीष्ट परिणाम नहीं मिल सकता। मशीनों द्वारा बड़े-बड़े कार्य होते हैं, पर होते तभी हैं जब वे उचित रीति से चलाई जाएँ। यदि कोई अनाड़ी चलाने वाला मशीन को यों ही अंधाधुंध चालू कर दे, तो लाभ होना तो दूर, उलटे कारखाने के लिए तथा चलाने वाले के लिए संकट उत्पन्न हो सकता है। मोटर तेज दौड़ने वाला वाहन है। उसके द्वारा एक-एक दिन में कई सौ मील की यात्रा सुखपूर्वक की जा सकती है, पर अगर कोई अनाड़ी आदमी ड्राइवर की जगह जा बैठे और चलाने की विधि तथा कलपुर्जों के उपयोग की जानकारी न होते हुए भी उसे चलाना आरंभ कर दे; तो यात्रा तो दूर, उलटे ड्राइवर और मोटर यात्रा करने वाले के लिए अनिष्ट खड़ा हो जाएगा या यात्रा निष्फल होगी। ऐसी दशा में मोटर को कोसना, उनकी शक्ति पर अविश्वास कर बैठना उचित नहीं कहा जा सकता। अनाड़ी साधकों द्वारा की गई उपासना भी यदि निष्फल हो, तो आश्चर्य की बात नहीं है।

जो वस्तु जितनी अधिक महत्त्वपूर्ण होती है, उसकी प्राप्ति उतनी कठिन भी होती है। सीप-घोंघे आसानी से मिल सकते हैं उन्हें चाहे कोई बीन सकता है, पर मोती जिन्हें प्राप्त करने हैं समुद्र तल तक उतरना पड़ेगा और इस खतरे के काम को किसी से सीखना पड़ेगा। कोई अजनबी

आदमी गोताखोरी को बच्चों का खेल समझकर या यों ही समुद्र तल में उतरने के लिए डुबकी लगाए, तो उसे अपनी नासमझी के कारण असफलता पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

यों गायत्री में अन्य समस्त मंत्रों की अपेक्षा एक खास विशेषता यह है कि नियत विधि से साधना न करने पर भी साधक को कुछ हानि नहीं होती है, परिश्रम भी निष्फल नहीं जाता कुछ न कुछ लाभ ही रहता है, पर साधारण साधना में वैसा कोई खतरा नहीं है। तो भी परिश्रम का पूरा प्रतिफल न मिलना भी तो एक प्रकार की हानि है, इसलिए बुद्धिमान मनुष्य उतावली, अहमन्यता उपेक्षा के शिकार नहीं होते और साधना मार्ग पर वैसी ही समझदारी से चलते हैं, जैसे हाथी नदी को पार करते समय थाह लगाते हुए, धीरे-धीरे आगे कदम बढ़ाता है।

कुछ औषधियाँ नियत मात्रा में लेकर नियत विधिपूर्वक तैयार करके रसायन बनाई जाए और उसको नियत मात्रा में नियत अनुपात के साथ रोगी को सेवन कराया जाए, तो आश्चर्यजनक लाभ होता है; परंतु यदि उन्हीं औषधियों को चाहे जिस तरह, चाहे जितनी मात्रा में, चाहे जिस अनुपात से सेवन करा दिया जाए तो निश्चय ही परिणाम अच्छा न होगा। वे औषधियाँ जो विधिपूर्वक प्रयुक्त होने पर अमृतोपम लाभ दिखाती थीं, अविधिपूर्वक प्रयुक्त होने पर निरर्थक सिद्ध होती हैं। ऐसी दशा में उन औषधियों को दोष देना न्याय संगत नहीं कहा जा सकता। गायत्री साधना भी यदि अविधिपूर्वक की गई है, तो वैसा लाभ नहीं दिखा सकती जैसा कि विधिपूर्वक साधना से होना चाहिए।

पात्र-कुपात्र हर कोई गायत्री शक्ति का मनमाना प्रयोग न कर सके इसलिए कलियुग से पूर्व ही गायत्री को कीलित कर दिया गया है। जो उसका उत्कीलन जानता है, वही लाभ उठा सकता है। बंदूक का लाइसेंस सरकार उन्हीं को देती है, जो उसके पात्र हैं। परमाणु बम का रहस्य थोड़े से लोगों तक सीमित रखा गया, ताकि हर कोई उसका दुरुपयोग न कर डाले। कीमती खजाने की तिजोरियों में बढ़िया चोर-ताले

लगे होते हैं, ताकि अनधिकारी लोग उसे खोल न सकें। इसी आधार पर गायत्री को कीलित किया गया है कि हर कोई उससे अनुपयुक्त प्रयोजन सिद्ध न कर सके।

पुराणों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक बार गायत्री को वशिष्ठ और विश्वामित्र ऋषियों ने शाप दिया था कि "उसकी साधना निष्फल होगी।" इतनी बड़ी शक्ति के निष्फल होने से हाहाकार मच गया, तब देवताओं ने प्रार्थना की कि इन शापों का विमोचन होना चाहिए। अंत में ऐसा मार्ग निकाला गया कि जो शाप-विमोचन की विधि पूरी करके गायत्री साधना करेगा, उसका प्रयत्न सफल होगा और शेष लोगों का श्रम निरर्थक जाएगा। इस पौराणिक उपाख्यान में एक भारी रहस्य छिपा हुआ है, जिसे न जानने वाले केवल 'शापमुक्तोभव' मंत्रों को दुहराकर यह मान लेते हैं कि हमारी साधना शाप मुक्त हो गई।

वशिष्ठ का अर्थ—'विशेष रूप से श्रेष्ठ'। गायत्री साधना में जिसने विशेष रूप से श्रम किया है, जिसने सवा करोड़ का जप किया है, उसे वशिष्ठ पदवी दी जाती थी। रघुवंशियों के कुल गुरु सदा ऐसे ही वशिष्ठ पदवी धारी होते थे। रघु, अज, दिलीप, दशरथ, राम, लवकुश इन छः पीढ़ियों के गुरु एक वशिष्ठ नहीं अलग-अलग थे पर उपासना के आधार पर उन सभी ने वशिष्ठ पदवी को पाया था। वशिष्ठ का शाप विमोचन करने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के वशिष्ठ से गायत्री साधना की दीक्षा लेनी चाहिए, उसे अपना पथ-प्रदर्शक नियुक्त करना चाहिए। कारण यह है कि अनुभवी व्यक्ति ही यह जान सकता है कि मार्ग में कहाँ क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं और उनका निवारण कैसे किया जा सकता है? जब पानी में तैरने की शिक्षा किसी नए आदमी को दी जाती है, तो कोई कुशल तैराक उसके साथ रहता है, ताकि कदाचित नौसिखिया डूबने लगे तो वह हाथ पकड़कर उसे खींच ले और उसे पार लगा दे तथा तैरते समय जो भूल हो रही हो, उसे समझाता, सुधारता चले। यदि कोई शिक्षक तैराक न हो और तैरना सीखने के लिए बालक मचल रहे हों, तो कोई वृद्ध विनोदी पुरुष उन बालकों को समझाने के लिए ऐसा कह सकता है कि—

"बच्चो! तालाब में न उतरना, इसमें तैराक गुरु का शाप है। बिना गुरु का शाप मुक्त हुए तैरना सीखोगे, तो वह निष्फल होगा।" इन शब्दों में अलंकार तो है, शाब्दिक अत्युक्ति भी इसे कह सकते हैं, पर तथ्य बिलकुल सच्चा है। बिना शिक्षक की निगरानी के तैरना सीखने की कोशिश करना एक दुस्साहस ही है।

सवा करोड़ जप की साधना करने वाले गायत्री उपासक की—वशिष्ठ की—"संरक्षकता प्राप्त कर लेना, वशिष्ठ का शाप-विमोचन है। इससे साधक निर्भीक, निधड़क अपने मार्ग पर तेजी से बढ़ता चला जाता है। रास्ते की कठिनाइयों को वह संरक्षक दूर करता चलता है, जिससे नए साधक के मार्ग की बहुत सी बाधाएँ अपने आप दूर हो जाती हैं और अभीष्ट उद्देश्य तक जल्दी ही पहुँच जाता है।

गायत्री को केवल वशिष्ठ का ही शाप नहीं; एक दूसरा शाप भी है, वह है विश्वामित्र का। इस रत्न-कोष पर दुहरे ताले जड़े हुए हैं, ताकि अधिकारी लोग ही खोल सकें और ले भागू, जल्दबाज, अश्रद्धालु, हरामखोरों की दाल न गलने पाए। विश्वामित्र का अर्थ है संसार की भलाई करने वाला परमार्थी, उदार, सत्पुरुष कर्त्तव्यनिष्ठ। गायत्री का शिक्षक केवल वशिष्ठ गुण वाला होना ही पर्याप्त नहीं है, वरन उसे विश्वामित्र भी होना चाहिए। कठोर साधना और तपश्चर्या द्वारा बुरे स्वभाव के लोग भी सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। रावण वेदपाठी था, उसने बड़ी-बड़ी तपश्चर्याएँ करके आश्चर्यजनक सिद्धियाँ भी प्राप्त की थीं। इस प्रकार वह वशिष्ठ पदवीधारी तो कहा जा सकता है, पर विश्वामित्र नहीं, क्योंकि संसार की भलाई के, धर्मचर्या एवं परमार्थ के गुण उसमें नहीं थे। स्वार्थी, लालची तथा संकीर्णमनोवृत्ति के लोग चाहे कितने ही बड़े सिद्ध क्यों न हों, शिक्षक नियुक्त किए जाने योग्य नहीं, यही दुहरा शाप विमोचन है। जिसने वशिष्ठ और विश्वामित्र गुण वाला पथ-प्रदर्शक, गायत्री गुरु प्राप्त कर लिया, उसने दोनों शापों से गायत्री को छुड़ा लिया, उसकी साधना वैसा ही फल उपस्थित करेगी, जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है।

यह कार्य सरल नहीं है; क्योंकि एक तो ऐसे व्यक्ति ही मुश्किल से मिलते हैं, जो वशिष्ठ और विश्वामित्र गुणों से संपन्न हों। यदि मिलें भी तो हर किसी का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं होते, क्योंकि उनकी शक्ति और सामर्थ्य सीमित होती है और उससे वे कुछ थोड़े ही लोगों की सेवा कर सकते हैं। यदि पहले से ही उतने लोगों का भार अपने ऊपर लिया हुआ है, तो अधिक की सेवा करना उनके लिए कठिन है। स्कूलों में एक अध्यापक प्रायः ३० की संख्या तक विद्यार्थी पढ़ा सकता है। यदि वह संख्या ६० हो जाए, तो न अध्यापक पढ़ा सकेगा, न बालक पढ़ सकेंगे, इसलिए ऐसे सुयोग्य शिक्षक सदा ही नहीं मिल सकते। लोभी, स्वार्थी और ठग गुरुओं की कमी नहीं, जो दो रुपया गुरु-दक्षिणा लेने के लोभ से चाहे किसी के गले में कंठी बाँध देते हैं। ऐसे लोगों को पथ-प्रदर्शक नियुक्त करना एक प्रवंचना और विडंबना मात्र है।

गायत्री दीक्षा गुरुमुख होकर ली जाती है, तभी फलदायक होती है। बारूद को जमीन पर चाहे जहाँ फैलाकर उसमें दियासलाई लगाई जाए, तो वह मामूली तरह से जल जाएगी, पर उसे ही बंदूक में भरकर विधिपूर्वक प्रयुक्त किया जाए, तो उसमें भयंकर शब्द के साथ एक प्राणघातक शक्ति पैदा होगी। छपे हुए कागजों में पढ़कर या कहीं किसी से भी गायत्री मंत्र सीख लेना ऐसा ही है, जैसा जमीन पर बिछाकर बारूद जलाना और गुरुमुख होकर गायत्री दीक्षा लेना ऐसा है, जैसे बंदूक के माध्यम से बारूद का उपयोग होना।

गायत्री की विधिपूर्वक साधना करना ही अपने परिश्रम को सफल बनाने का सीधा मार्ग है, इस मार्ग का पहला आधार ऐसे पथ-प्रदर्शक को खोज निकालना है, जो वशिष्ठ एवं विश्वामित्र गुण वाला हो और जिनके संरक्षण में शाप विमोचन गायत्री-साधना हो सके। ऐसे सुयोग्य संरक्षक सबसे पहले यह देखते हैं कि साधक की मनोभूमि, शक्ति, रुचि कैसी है, उसी के अनुसार वे उसके लिए साधन विधि चुनकर देते हैं। अपने आप विद्यार्थी यह निश्चित नहीं कर सकता कि मुझे किस क्रम से क्या-क्या

पढ़ना चाहिए? इसे तो अध्यापक ही जानता है कि यह विद्यार्थी किस स्तर के कक्षा की योग्यता रखता है और इसे क्या पढ़ाया जाना चाहिए? जैसे अलग-अलग प्रकृति के एक रोग के रोगियों को भी औषधि अलग-अलग अनुपान तथा मात्र का ध्यान रख कर दी जाती है, वैसे ही साधकों की आंतरिक स्थिति के अनुसार उसके साधनों नियमों में हेर-फेर हो जाता है। इसका निर्णय साधक स्वयं नहीं कर सकता। यह कार्य तो सुयोग्य, अनुभवी और सूक्ष्मदर्शी पथ-प्रदर्शक ही कर सकता है।

आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए श्रद्धा और विश्वास यह दो प्रधान अवलंबन हैं। इन दोनों का प्रारंभिक अभ्यास गुरु को माध्यम बनाकर किया जाता है। जैसे ईश्वर उपासना के लिए प्रारंभिक माध्मय किसी मूर्ति, चित्र या छवि को बनाया जाता है; वैसे ही श्रद्धा और विश्वास की उन्नति गुरु नामक व्यक्ति के ऊपर उन्हें दृढ़तापूर्वक जमाने से होती है। प्रेम तो स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र आदि पर भी हो सकता है, पर श्रद्धापूर्वक प्रेम का पात्र गुरु ही होता है। माता-पिता भी यदि वशिष्ठ, विश्वामित्र गुणों वाले हों, तो वे सबसे उत्तम गुरु हो सकते हैं। गुरु परम हितचिंतक, शिष्य की मनोभूमि से परिचित और उसकी कमजोरियों को समझने वाला होता है, इसलिए उसके दोषों को जानकर उन्हें धीरे-धीरे उसकी रुचि दूसरी ओर मोड़ने का प्रयत्न करता है, ताकि वे दोष अपने आप छूट जाएँ। योग्य गुरु अपनी साधना द्वारा एकत्रित की आध्यात्मिक शक्ति को धीरे-धीरे शिष्य के अंत:करण में वैसे ही प्रवेश कराता रहता है, जैसे माता अपने पचाए हुए भोजन को स्तनों में दूध बनाकर अपने बालक को पिलाती रहती है। माता का दूध पीकर बालक पुष्ट होता है। गुरु का आत्मतेज पीकर शिष्य का आत्मबल बढ़ता है इस आदान-प्रदान को आध्यात्मिक भाषा में 'शक्तिपात' कहते हैं। ऐसे गुरु का प्राप्त होना पूर्व संचित शुभ संस्कारों का फल अथवा प्रभु की महती कृपा का चिन्ह ही समझना चाहिए।

गुरु का वरण गायत्री उपासना का आरंभिक किंतु महत्त्वपूर्ण अंग इसलिए माना गया है कि वह सदगुरु उपलब्ध कराने का प्रथम सोपान

है। सद्गुरु उस निर्मल अंतरात्मा को कहते हैं, जो हमारा सही मार्गदर्शन करने में समर्थ है। इसी की प्रेरणा और प्रकाश का अनुसरण करके मनुष्य महानता का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। हर घड़ी सद्गुरु का ही सत्संग संभव है और कुमार्ग से बचने तथा सन्मार्ग पर चलने के हर अवसर पर उचित पथ प्रदर्शन के लिए वही हर समय उपस्थित रह सकता है। जिनके साथ सद्गुरु का मार्गदर्शन, प्रोत्साहन और उद्बोधन हर घड़ी मौजूद है उसके लिए जीवन लक्ष्य प्राप्त कर सकना अति सरल ही बन जाता है।

आमतौर से मनोभूमि में बसे हुए कुसंस्कार, दुर्भाव, मल, आवरण विक्षेप अंतःकरण को मूर्छित बना देते हैं और वह उचित मार्गदर्शन करने में समर्थ नहीं होता। दबी जबान से सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता भी है, तो वह इतनी मंद होती है कि वासना और तृष्णा के नशे में मदोन्मत्त मन उसे ठीक तरह से सुन भी नहीं पाता। आवश्यकता इस बात की है कि अंतरात्मा में विद्यमान सद्गुरु को स्वच्छ, समर्थ और सक्रिय बनाया जाए। जिसके प्रभाव से प्रभावित चेतना को कुपथ छोड़कर सत्पथ पर चलने का साहस उपलब्ध हो सके। जिसने इतनी सफलता प्राप्त कर ली हो, उसके लिए मानवी महत्ता का लक्ष्य प्राप्त कर लेना कुछ भी कठिन नहीं है।

कितने ही व्यक्ति सोचते हैं कि अमुक समय पर एक व्यक्ति को गुरु बना चुके, अब हमें दूसरे पथ-प्रदर्शक की नियुक्ति का अधिकार नहीं रहा। उनका यह सोचना वैसा ही है जैसा कोई विद्यार्थी यह कहे कि—"अक्षर आरंभ करते समय जिस अध्यापक को मैंने अध्यापक माना था, अब वही जीवन भर अध्यापक रहेगा, उसके अतिरिक्त न किसी से शिक्षा ग्रहण करूँगा और न किसी को अध्यापक मानूँगा।" एक ही अध्यापक से संसार भर के सभी विषयों के जान लेने की आशा नही की जा सकती। फिर वह अध्यापक मर जाए, रोगी हो जाए, कहीं चला जाए, तो भी उसी से शिक्षा लेने का आग्रह करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है? फिर ऐसा भी हो सकता है कि कोई शिष्य

प्राथमिक गुरु की अपेक्षा कहीं अधिक जानकार हो जाए और उसका जिज्ञासा क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाए, ऐसा दशा में उसकी जिज्ञासाओं का समाधान उस प्राथमिक शिक्षक द्वारा ही करने का आग्रह किया जाए, तो यह किस प्रकार संभव है ?

प्राचीनकाल के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर इस उलझन का समाधान हो जाता है। महर्षि दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु किए थे। राम और लक्ष्मण ने जहाँ वशिष्ठ से शिक्षा पाई थी, वहाँ विश्वामित्र से भी बहुत कुछ सीखा था। दोनों ही उनके गुरु थे। श्रीकृष्ण जी ने संदीपन ऋषि से भी विद्याएँ पढ़ी थीं और महर्षि दुर्वासा भी उनके गुरु थे। अर्जुन के गुरु द्रोणाचार्य भी थे और कृष्ण भी। इंद्र के गुरु वृहस्पति भी थे और नारद भी। इस प्रकार अनेक उदाहरण ऐसे मिलते हैं, जिससे प्रकट होता है कि आवश्यकतानुसार एक गुरु अनेक शिष्यों की सेवा कर सकता है और एक शिष्य अनेक गुरुओं से ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इनमें कोई ऐसी सीमा का बंधन नहीं, जिसके कारण एक के उपरांत किसी दूसरे से प्रकाश प्राप्त करने में प्रतिबंध हो। वैसे भी एक व्यक्ति के कई पुरोहित, तीर्थ पुरोहित होते हैं। ग्राम्य पुरोहित, कुलपुरोहित, राष्ट्र पुरोहित और दीक्षा पुरोहित आदि। जिसे गायत्री साधना का पथ प्रदर्शक नियुक्त किया है वह साधना पुरोहित या ब्रह्म पुरोहित है। यह सभी पुरोहित अपने-अपने क्षेत्र, अवसर और कार्य में पूछने योग्य तथा पूजन योग्य हैं। एक दूसरे के विरोधी नहीं वरन पूरक होते हैं।

चौबीस अक्षरों का गायत्री मंत्र सर्व प्रसिद्ध है, उसे आजकल शिक्षित वर्ग के सभी लोग जानते हैं। फिर भी उपासना करनी है, साधना के अन्य लाभों को लेना है, तो गुरुमुख होकर गायत्री दीक्षा लेनी चाहिए। वशिष्ठ और विश्वामित्र का शाप विमोचन कराके, कीलित गायत्री का उत्कीलन करके साधना करनी चाहिए। गुरुमुख होकर गायत्री दीक्षा लेना एक संस्कार है, जिसमें उस दिन गुरु-शिष्य दोनों को उपवास रखना पड़ता है। शिष्य, चंदन, अक्षत, धूप, नैवेद्य, अन्न, वस्त्र, पात्र, दक्षिणा, आदि से गुरु-पूजन करता है। गुरु-शिष्य को मंत्र देता है और पथ-प्रदर्शक

का भार अपने ऊपर लेता है। इस ग्रंथिबंधन के उपरांत अपने उपयुक्त साधना निश्चित कराके जो शिष्य श्रद्धापूर्वक आगे बढ़ते हैं, वे भगवती की कृपा से अपने अभीष्ट उद्देश्य को प्राप्त कर लेते हैं।

जब से गायत्री की दीक्षा जी जाए, तब से लेकर जब तक पूर्ण सिद्धि प्राप्त न हो जाए, तब तक साधना गुरु को अपने साधना के समय समीप रखना चाहिए। गुरु का प्रत्यक्ष रूप से साथ रहना संभव नहीं हो सकता है, पर उनका चित्र काँच में मढ़वा कर पूजा के स्थान पर रखा जा सकता है और गायत्री संध्या, जप, अनुष्ठान या कोई और साधना आरंभ करने से पूर्व उस चित्र का पूजन, धूप, अक्षत, नैवेद्य, पुष्प, चंदन आदि से कर लेना चाहिए। जहाँ चित्र उपलब्ध न हो वहाँ नारियल को गुरु के प्रतीक रूप में स्थापित कर लेना चाहिए। एकलव्य भील की कथा प्रसिद्ध है कि उसने द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति स्थापित करके उसी को गुरु माना था, उन्हीं से पूछकर बाण विद्या सीखता था। अंत में वह इतना सफल धनुर्धारी हुआ कि पांडवों तक को उसकी विशेषता देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ा था। चित्र या नारियल के माध्यम से गुरु-पूजा करके जो भी गायत्री-साधना आरंभ की जाएगी वह शाप-मुक्त तथा उत्कीलित होगी।

—'मनुष्य कोरे कागज के समान है। वह जिन परिस्थितियों में रहता है, जिन विचारों से प्रभावित होता है, उसी ढाँचे में ढल जाता है।'

—बेकन

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।